व्यवस्था की मूल इकाई परिवार

मध्यस्थ दर्शन के वांगमय से संकलित

व्यक्तिवाद का विकल्प सह-अस्तित्ववाद

- श्रद्धेय नागराज जी ने दर्शन, वाद, शास्त्र और संविधान में अनेक सिद्धांत और समीक्षाओं में यह स्पष्ट किया है कि **अकेले व्यक्ति में, अकेले आदमी में आचरण, कार्यक्रम, व्यवस्था और सार्थकता का प्रकाशन नहीं है।**

- साथ ही, उन्होंने **व्यक्तिवाद** को ही मानव की समस्याओं और असफलताओं का कारण माना है।

- इसी कारण परिवार को व्यवस्था की मूल इकाई के रूप में दस सोपानी व्यवस्था में प्रस्तुत किया है।

- **व्यक्तिवाद** अहमता का द्योतक है। जीवन/मानव में स्वयं के होने को 'मात्र क्रिया' बुद्धि का **'मैं हूं'** रूप में मान्यता ही **अहंकार** है।

- 'जीवन' अनुभव के उपरांत ही स्वयं का होना सहअस्तित्व में (व्यापक वस्तु में) अविभाज्य वर्तमानता के रूप में स्वीकृति, बुद्धि में सहअस्तित्व में स्वयं के होने की स्वीकृति ही अहंकार का विलय है।

व्यक्तिवाद का विकल्प सह-अस्तित्ववाद

- यही क्रम से चित्त, वृत्ति, मन और मानव के व्यवहार-कार्य को सहअस्तित्व पहचानने का क्रम है। बुद्धि से अहंकार (स्वयं की अकेली पहचान) का विलय ही सहअस्तित्व में सभी क्रियाओं को देखने की पात्रता है। इसी में **व्यक्तिवाद** का विलय होता है।
- **व्यक्ति अपने को अकेले** (सबसे पृथक - जिसको निजता, व्यक्तिगत, वैयक्तिक स्वतंत्रता आदि कह रहे हैं।) **मनना ही सभी समस्याओं के मूल में है।**
- मानव अपने होने-रहने को सर्वप्रथम सह-अस्तित्व में परिवार में ही पहचान पाता है, इसलिए, यह कहा गया है कि **“मानव में अकेले में, से, के लिए नहीं है।”**
- परिवार में ही व्यक्ति मानवीय आचरण, माननीय कार्यक्रमों में भागीदारी पूर्वक सार्थकता का प्रकाशन को सहअस्तित्व में पहचान कर प्रमाणित करता है। समाधान, समृद्धि संपन्न परिवार में शिक्षा संस्कार पूर्वक और परिवार में आवश्यकता से अधिक उत्पादन पूर्वक (समृद्धि पूर्वक) जीते हुए **‘स्वायत्त मानव’** का पहचान है।
- स्वायत्तता का अर्थ है किसी के दबाव और प्रभाव में ना रहना और परिवार उत्पादन कार्य (समृद्धि) में भागीदारी करना।

व्यवस्था की मूल इकाई परिवार

4.1 **परिवार ही क्यों व्यक्ति क्यों नहीं?**

- ❖ मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अनुसार **व्यवस्था की मूल इकाई परिवार** है।

- ❖ परिवार ही विश्व परिवार तक परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था के रूप में आपस में संबंधित हैं, एकसूत्रित है और अखंड समाज के रूप में विभाज्यता को प्रमाणित करते हैं।

- ❖ मानव अभ्यास दर्शन में मानव और मानवीय आचरण के
  - चार आयाम (अनुभव, विचार, व्यवहार एवं व्यवसाय) व
  - पांच स्थितियों (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, अंतरराष्ट्र)

  की एकसूत्रता, अविभाज्यता, अखंडता के रूप में अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में व्याख्यायित भी विवेचित और स्पष्ट किया गया है।

- ❖ अभ्यास दर्शन में श्रद्धेय नागराज जी ने लिखा है कि जनवादी तंत्र को दस सोपानी व्यवस्था के रूप में निर्देशित किया है।

व्यवस्था की मूल इकाई व्यक्ति क्यों नहीं?

मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद में कहा गया है कि

- संबंधविहीन मानव नहीं है,
- अकेले में मानवीय आचरण का प्रकटन नहीं है।

इन संदर्भों को निम्नांकित वांग्मय में अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि ये सभी वांग्मय **व्यक्तिवाद और व्यक्ति केन्द्रित प्रतिपादन नहीं हैं** (प्रचलित व्यवस्था, संविधान और शिक्षा **व्यक्तिवाद**, वैयक्तिक स्वतंत्रता और भौतिकवाद पर आधारित है।)

मानव अभ्यास दर्शन

- "प्रत्येक मानव का **अकेले में** कोई कार्यक्रम स्पष्ट नहीं है।" (अध्याय 3 पृष्ठ-19)
- **अकेले मानव** में से के लिए सार्थकता सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि, समाज या सामाजिकता इसका मूल आधार या कारण है। (अध्याय 4 पृष्ठ-24-25)
- मानव **अकेले में, से, के लिए नहीं है।** समाज का केंद्र मानव है। (अध्याय 5 पृष्ठ-28)
- **व्यक्तिवादी** एवं वर्गवादी प्रयोग सफल नहीं रहा है। (अध्याय 9 पृष्ठ-59)
- वर्गीय, परिवारीय और **व्यक्तिवादी** परंपरा (जीवन) संघर्ष से मुक्त नहीं है, फलत: सामाजिक नहीं है। (अध्याय 27 पृष्ठ-136)
- स्पष्ट है कि व्यक्ति केन्द्रित और **व्यक्तिवादी** विधि से परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था संभव नहीं है।

व्यवहारात्मक जनवाद

- जब तक समुदाय, वर्गों, **व्यक्तिवाद** के रूप में मानव जाति को पहचाना जाता रहेगा, तब तक युद्ध मुक्ति नहीं है। (अध्याय 3 पृष्ठ-63)

- "संग्रह-सुविधा का तृप्ति बिन्दु नहीं है। प्राचीन, अर्वाचीन स्वीकृतियाँ भक्ति-विरक्ति व भक्ति-विरक्ति को बेहतरीन जिन्दगी मानी गई थी। इन दोनों का **व्यक्तिवाद** में व रहस्य में अन्त होना सिद्ध किया जा चुका है।"
  "**व्यक्तिवाद** न तो परिवार व्यवस्था का आधार है, न समुदाय व्यवस्था का आधार है, समाज व्यवस्था तो कोशों दूर है।" (अध्याय 3 पृष्ठ-74)

- भोगशक्ति **व्यक्तिवादी** होना पाया जाता है। भक्ति-विरक्ति भी **व्यक्तिवादी** है। "**व्यक्तिवाद** किसी शुभ स्थली पर पहुँचने में समर्थ नहीं हुआ सर्वशुभ तो बहुत दूर है।" (अध्याय 6 पृष्ठ-140)

- भौतिकवादी विधि से मानव सुविधा-संग्रह के चक्कर में **व्यक्तिवादी** हो गया।
- आदर्शवादी विधि से भक्ति-विरक्ति में समर्पित होकर **व्यक्तिवादी** हो गया

दोनों विधि से परिवार, समाज व्यवस्था और व्यवहार का तालमेल स्वरूप निष्पन्न नहीं हो पाई।

व्यवहारात्मक जनवाद

- अभी तक की चर्चा की निश्चित विभाजन रेखा
  - भोगवाद और
  - त्यागवाद है।

  ये दोनों **व्यक्तिवादी** होने के कारण अलगाव-विलगाव होने की मानसिकता और चर्चा मानव कुल में व्याप्त है।

- ऐसी **व्यक्तिवादी** अहमता को और कठोर बनाने के क्रम में अनेकानेक तरीके अपनाए गए ऐसे तरीकों में माध्यम अतिमहत्वपूर्ण रहा। (अध्याय 1 पृष्ठ)

- सुविधा-संग्रह, भोग, अतिभोग, बहुभोग की ओर ही होती है। अन्यथा, इससे असफल होने की स्थिति में विरक्ति-भक्ति की हो पाती है। इन तमाम प्रकार की नकारात्मक रोमांचक चर्चाओं के साथ-साथ केवल **व्यक्तिवादी** मानसिकता ही सघन होती हुई देखी गयी।

  दूसरी भाषा में **व्यक्तिवादी** अहमता बढ़ती गयी। (अध्याय 1 पृष्ठ-14)

- **व्यक्तिवादी** समुदायवादी विधि से प्रत्येक मानव समस्याओं को पालता है, पोषता है और वितरण किया करता है। परिवार मानव के रूप में प्रत्येक व्यक्ति समाधान को पालता है पोषता है और वितरित करता है, क्योंकि जो जिसके पास रहता है वह उसी को बंटन करता है। स्वायत्त मानव ही परिवार मानव के रूप में प्रमाणित हो पाता है। स्वायत्त मानव का तात्पर्य स्वयंस्फूर्त विधि से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलंबी, होने की अर्हता से है। (अध्याय 4 पृष्ठ)

- प्रत्येक मानव में ये तीनों प्रकार के बन्धन सहित कार्य करता हुआ कल्पनाशीलताओं, उसके क्रियान्वयन क्रम में कर्म स्वतंत्रता का नियोजन दृष्टव्य है। यह भय और प्रलोभन, संग्रह और द्वेष से ग्रसित होना सुदूर विगत से इस वर्तमान बीसवीं शताब्दी की दसवें दशक तक स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे बंधनवश ही **व्यक्तिवादी अहमताओं** और अहमताओं से अहमताओं का टकराव विविध प्रकार से होते ही आई। (अध्याय 4 पृष्ठ)

- इसके पहले अभी तक **व्यक्तिवादी** समुदायों के रूप में गुजरी बीती मानव परंपरा में तत्कालीन विधियों से मानव को ही स्वीकृत अर्थ का स्वरूप, परिवार में आबंटन, अथवा, बंटन समुदायों में विनिमय, आवश्यकता, संभावना, स्रोत और मानव से किया गया प्रवृत्तियों और कार्यों का सामान्य स्पष्टीकरण को उचित समझकर उसे भी प्रस्तुत किए हैं। (अध्याय 5 पृष्ठ)

आवर्तनशील अर्थशास्त्र

- भय और प्रलोभन, संग्रह और द्वेष से ग्रसित होना सुदूर विगत से इस वर्तमान बीसवीं शताब्दी की दसवें दशक तक स्पष्ट हो चुकी है। ऐसे बंधनवश ही **व्यक्तिवादी** अहमताओं और अहमताओं से अहमताओं का टकाराव विविध प्रकार से होते ही आई।

- यही मानव परंपरा में संघर्ष का स्रोत रहा है। इसका वर्तमान में साक्ष्य यही है शिक्षा जैसी परंपरा में लाभोन्मादी अर्थशास्त्र, भोगोन्मादी समाजशास्त्र, कामोन्मादी मनोविज्ञान शास्त्र, पठन-पाठन, साहित्य कलाओं में रुचि और विवशताएं है। अब बंधन से मुक्ति क्रम में समझदारी व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी होना सहज समीचीन है इसलिए आवर्तनशील विधि को जागृतपूर्वक पहचानना संभव हुआ। (अध्याय 5 पृष्ठ)

- मूल्य, चरित्र और नैतिकता क्रम में सर्वमानव वैभवित होना चाहता ही है। सफल होने में अभी तक जो अड़चन थी वह केवल **व्यक्तिवादी** एवं समुदाय चेतना, सामुदायिक श्रेष्ठता का भ्रम। फलस्वरूप, समुदाय-वर्ग संघर्ष, प्राकृतिक देन-ईश्वरीय देन मान लेना ही रहा। (अध्याय 7 पृष्ठ)

समाधानात्मक भौतिकवाद

- ये सब रहते हुए भ्रमित होने का मूल तत्व यहीं हैं, सशक्त तत्व यही हैं-
  1. अभी तक बनी हुई **व्यक्तिवादी, समुदायवादी** परंपराएँ है।
  2. नैसर्गिकता है।
  3. वातावरण है।
- सम्पूर्ण अस्तित्व में प्रत्येक एक व्यापक में स्थित अनंत सहज वातावरण ही है। ''नैसर्गिकता'' धरती, हवा, पानी और हरियाली एवं जीवों के रूप में देखने को मिलती हैं। प्रत्येक मानव को संस्कार परंपरा से ही मिलते हैं। यह सब नित्य प्रमाण ही हैं। इन्हीं के आधार पर केवल मानव की देन रूपी शिक्षा-संस्कार से ही मानव का भ्रमित होना देखा जा रहा है। (अध्याय-6)
- आदिकालीन और अभी अत्याधुनिक कालीन मानव प्रकृति आचरण, प्रमाण सम्पूर्ण प्रकार से व्यक्तिवादिता की ओर रही हैं क्योंकि विरक्ति और भक्तिवादी चरित्र भी **व्यक्तिवादी** होता है। इन दोनों के बीच में जो विविध प्रकार के इतिहास हैं वे सब प्रकारान्तर में भ्रमात्मक कथाएँ हैं। मानव अभी तक जितने भी समुदाय परंपरा में अपने को पहचानता है, इन सबका एक ही 'अभिशाप' रहा है कि अस्तित्व में अपने को अविभाज्य रूप में समग्रता के साथ दर्शन नहीं कर पाना। (अध्याय-9/249)

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

- ❖ मानव परंपरा तब तक भ्रमित रहना भावी है जब तक समुदाय और समुदायगत आवश्यकता की हठधर्मिता, सुविधा संग्रह की हठधर्मिता, भोग-अतिभोगवादी हठधर्मिता, आदमी को मूलत: दुखी मानने वाली हठधर्मिता, स्वार्थी, अज्ञानी और पापी मानने वाली हठधर्मिता, कोई एक समुदाय अपने को धर्मी अन्य को विधर्मी मानने की हठधर्मिता, द्रोह-विद्रोह-शोषण और युद्ध को एक आवश्यकता मानने वाली हठधर्मिता, **व्यक्तिवादी (अहमतावादी)** मानसिकता के लिये सभी हठधर्मिता रहेगी। (अध्याय-2/)

- ❖ साथ ही इस जागृति का प्रमाण में अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होना स्वाभाविक होने के कारण **सभी समुदायवादी एवं व्यक्तिवादी अस्मितायें** अपने आप विलय को प्राप्त करेगें। भ्रमवश ही मानव परंपरा में विभिन्न समुदाय और उसकी अस्मितावश द्रोह-विद्रोह-शोषण और युद्ध को एक आवश्यकता मानते हुए छल, कपट, दंभ और पाखण्ड का वशीभूत हो गया है, ये सब तभी विलय हो जाते है जिस मूहुर्त में इस धरती पर परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जागृति के साथ स्थापित हो जाता है। इसी के साथ अखण्ड समाज का सहज रूप सर्वविदित और प्रमाणित हो जाता है। (अध्याय-2/)

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

- **हठधर्मिता जो व्यक्तिवादी** (अहमतावादी) मानसिकता के लिये जिम्मेदार है उसके मूल में समाज विरोधी सूत्र सदा ही पनपते आई है। क्योंकि समाज, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था जो अस्तित्व सहज है, इसे स्पष्टतया समझने के स्थिति में हम यह पाते हैं कि यह अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व सूत्र ही है। सह-अस्तित्व सूत्र के आधार पर ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था हमें विदित हुआ है। इस तथ्य के आधार पर मानव जब तक जागृतिपूर्ण होता है तब तक भले ही ऊपर कहे हुए वितण्डावाद रहे आये। जैसे ही अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था परंपरा में प्रमाणित होते है, व्यक्तिवादी अहमताएँ अपने आप ही विलय को प्राप्त करते हैं। (अध्याय-2/)

- **व्यक्तिवादी अहमता** को शक्ति केन्द्रित शासन, उसमें अधिकारों को वर्तने के लिये प्रावधानित अधिकारों को प्रयोग करता हुआ, जितने भी विसंगतियाँ अधिकारी मानस और जनमानस के बीच दूरी तैयार होती जाती है, यह सब समस्या का ही ताण्डव है। समस्या में ग्रसित होने के फलस्वरूप या विवश होने के फलस्वरूप ही व्यक्तिवादी होना पाया जाता है। जैसे - **अधिकारवाद, भोगवाद, भक्तिवाद और विरक्तिवादी, ये सब व्यक्तिवादी अस्मिता** के रूप में ही पूर्ववर्ती वांग्मयों में स्वीकारा गया है। (अध्याय-2/)

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

- इसी से व्यवहारिक रूप में भ्रम और बन्धन परस्पर मानव के बीच में द्वेष के रूप में, परिवार-परिवार एवं समुदाय-समुदाय के बीच में वैचारिक मतभेद, ईर्ष्या, द्वेष, भय, संघर्ष के रूप में होना देखा गया। मानसिकता के रूप में अर्थात आशा, विचार, इच्छा के रूप में **व्यक्तिवादी अहमताएँ श्रेष्ठता, संग्रह, भोग के आधार पर गण्य हुई।** (अध्याय-5/)

- इसी के साथ-साथ उपासना, पूजा-पाठ और उसके तरीके के विभिन्नताएँ अपने-अपने श्रेष्ठता और अहमता के साथ पनपते आया। इस क्रम में भी **मानव और समुदाय व्यक्तिवादी हैं,** क्योंकि सभी **उपासना, प्रार्थना, पूजा-पाठ व्यक्तिवादी होता ही** है। समूहगत प्रार्थना-पूजा में भी हर व्यक्ति अपनी प्रमुखता और श्रेष्ठता के साथ ही प्रस्तुत होना पाया जाता है। (अध्याय-5/)

- शांतिवादी कल्पनाएँ जितने भी हो पायी, **व्यक्तिवादी** होने के कारण परिवार, समाज और व्यवस्था का आधार नहीं हो पाया। भोगवादी परिकल्पना भी व्यक्तिवादी हुई। यह सर्वविदित है विरक्तिवाद भी एकान्तवाद स्वान्त: सुख रूप में है। (अध्याय-6/)

- इस क्रम में यह पाये कि किसी न किसी इष्ट-अनिष्ट घटनाओं को अपने आराधना का फल मानते हुए सांत्वना लगाते हुए देखा गया। हमारी यात्रा में आराधना का फल-परिणामों में उक्त प्रकार से आंकलित करते रहे। अतएव **सभी आराधना व्यक्तिवादी होना स्पष्ट हो गया।** (अध्याय-6/)

व्यवहारवादी समाज शास्त्र

- दृष्टियाँ प्रिय, हित, लाभ रूप में भी भ्रान्तिपूर्वक कार्यशील होता है। भ्रमित होने का मूल कारण शरीर को जीवन समझना ही है। इसी भ्रमवश मानव को व्यक्ति और समुदाय के रूप में विचारों का फैलना देखा गया है। **व्यक्तिवाद अहमता** का द्योतक है। (अध्याय-/)

मानव संचेतना वादी मनोविज्ञान

- देहवाद से भोगवाद, ईश्वरवाद से एकान्तवाद, भक्ति-विरक्ति के रूप में प्रचलित हुआ एकान्त, **- जिसमें अकेले की महिमा, विशेषता, मोक्ष केवल अकेले के लिए संभव है, स्वर्गवाद - अकेले के लिए स्वर्ग।** इन मान्यताओं और आश्वासन विधियों से केवल **व्यक्तिवादी अहंता**, उससे होने वाली लाभ-हानि मानव परम्परा में हाथ लगी। जबकि **अकेले नाम की कोई स्थिति, गति नहीं है।** (अध्याय-3/)

- इस दशक तक **व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा** में अभी तक की शिक्षा, संस्कार विधियों से, **समुदायवादी अथवा व्यक्तिवादी** प्रयासों की अपेक्षा में होते हुए भी, स्वतंत्रता और स्वराज्य रूपी ध्रुवों के आधार पर सफल होने का आधार, किसी परम्परा में करतलगत नहीं हुआ अर्थात व्यवहार में प्रमाणित, शिक्षा में प्रबोधित नहीं हुआ। जिसके फलस्वरूप पुन: **व्यक्तिवादी मानसिकता और समुदायवादी मानसिकता** के लिए मानव विवश होते आया। इस प्रकार व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा का स्वरूप स्पष्ट हो गया। (अध्याय-3/)

मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

- भ्रमित परम्परा में रुढ़ियाँ **व्यक्तिवादी,** परिवार समुदाय क्रम में रुढ़ियाँ (सामुदायिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत रुढ़ियाँ) क्रम से, कौमार्य अवस्था की मानव संतान को प्रभावित कर लेती हैं। इस कौमार्य अवस्था के पहले से ही, भ्रमित समुदायों, परिवारों में अभ्यस्त विधि से आहार प्रणाली (चाहे वह शाकाहार, दुग्धपान हो, चाहे मांसाहार, मद्यपान हो) के अभ्यस्त हो जाते हैं। (अध्याय-3/)

- परिवार की अखंडता ही, विश्व परिवार की अखंडता का आधार है। परिवार में अन्तर्विरोध ही परिवार विघटन है। यह भ्रमवश व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण होना पाया जाता है। परिणामत: अखण्ड समाज का कल्पना ही नहीं हो पाती है। सभी छोटा परिवार, सयुंक्त परिवार दोनों ही **व्यक्तिवादवश के वाद-विवाद** में रह गये हैं।
  भोग लिप्सा, व्यसन के लिये छोटे परिवार को अनुकूल माना गया है। परिवार खंडित होने के उपरान्त, परिवार नहीं रह पाता है। **अकेले एक मनुष्य के आधार पर, परिवार का प्रमाण नहीं हो पाता।** इसी प्रकार विघटित मानव, समाज के रूप में नहीं होता। **परिवार व समाज का विघटन, मानव कुल का अभिशाप है।** इससे मुक्त होने के लिए, मानव की मानवता ही एक मात्र विधि है। (अध्याय-4/)

- **अकेले एक मनुष्य के आधार पर**, परिवार का प्रमाण नहीं हो पाता। इसी प्रकार विघटित मानव, समाज के रूप में नहीं होता। परिवार व समाज का विघटन, मानव कुल का अभिशाप है। इससे मुक्त होने के लिए, मानव की मानवता ही एक मात्र विधि है। (अध्याय-4/)

प्रचलित परंपरा में व्यक्तिवाद

- ❖ प्रचलित परंपरा में **व्यक्तिवाद**, व्यक्ति विशेष से संबंधित, व्यक्तिगत (निजी) और उस पर आधारित व्यक्तिगत स्वच्छता, वैयक्तिक स्वतंत्रता को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इसी कारण शिक्षा, शासन, संविधान, आचरण, विचार में व्यक्तिवादी परिलक्षित होता है।
- ❖ श्रद्धेय नागराज जी के अनुसार यही मानव जाति की समस्या के मूल में है, और सहअस्तित्ववाद में इसका समाधान दिखता है।
- ❖ प्रचलित विचार परंपरा में व्यक्तिवादी दर्शन और व्यक्तिवादी मान्यता को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "**व्यक्तिवाद** एक नैतिक (Ethical) राजनीतिक एवं सामाजिक दर्शन है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता पर बल देता है और इसका समर्थन करता है।
- ❖ साधारण अर्थ में स्वार्थ के समर्थन की अथवा विशिष्ट समझे जाने वाले **व्यक्ति की महत्ता स्वीकार करने की प्रवृत्ति** या **व्यक्ति को विशिष्ट ठहराने की प्रवृत्ति है।**"
- ❖ इसी प्रकार अराजकतावाद दार्शनिक रूप में **व्यक्तिवाद** से भिन्न होते हुए भी चरम व्यक्तिवादी का समर्थन करता है।

प्रचलित परंपरा में व्यक्तिवाद

- **व्यक्तिवाद** राज्य (व्यवस्था) को आवश्यक बुराई (necessary evil) मानता है और अराजकतावाद राज्य और व्यवस्था को अनावश्यक मानता है।
  तात्विक रूप से **व्यक्तिवाद**, ब्रह्मांड को अलग-अलग की जा सकने वाली इकाइयों से रचित मानता है।

- व्यक्तिवादी दार्शनिकों की व्याख्याओं में स्पष्ट किया गया है कि **व्यक्तिवाद** राज्य के सीमित अधिकार, मुक्त बाजार, वैयक्तिक स्वतंत्रता, स्वेच्छाचारिता, व्यक्तिगत संपत्ति, व्यक्ति की गरिमा, व्यक्तिवादी अधिकार और निजता के अधिकार ऐसी ही अन्य प्रवृत्तियों को **व्यक्तिवाद** ने समाज व राज्य में प्रतिष्ठित किया है।

- व्यक्तिवादी चिंतकों का यह भी मानना है कि "किसी भी कीमत में अपना अंतःकरण किसी निर्वाचित नेता या अन्य तरह के नेता के अधीन नहीं करना चाहिए।"
  यह सब बताता है कि मानव में स्वतंत्रता की चाहत ही उसे **व्यक्तिवाद** की ओर ले गई जहां स्वतंत्रता का प्रभाव नहीं मिला। व्यक्तिवादी तो यहां तक गए हैं कि सुख का अर्थ ही वयक्तिका की रक्षा है।

- आश्चर्य यह है कि **व्यक्तिवाद** को वामपंथी और दक्षिणपंथी दोनों ने ही प्रयोग किया। मध्यस्थ दर्शन स्पष्टता से कह रहा है कि सुविधा-संग्रह, (पूंजीवाद, साम्यवाद, भौतिकवाद) और भक्ति-विरक्ति (आदर्शवाद) दोनों व्यक्तिवादी हैं।